ईश्वरकृष्ण की सांख्यकारिका

दु:खत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदपघातके हेतौ ।
दृष्टे साऽपार्था चेन्नैकान्तात्यन्तोऽभावात् ॥ १ ॥

॥ भावार्थः ॥

आध्यात्मिक (शारीरिक और मानसिक) आधिदैविक (वर्षा ठण्डी गर्मी आदि) और आधिभौतिक (पशुपक्षियों से उत्पन्न) इन तीन प्रकार के दुःखों का अभिघात होने से उनको दूर करने के हेतु में जिज्ञासा होती है। जिससे दृष्ट (प्रत्यक्ष औषधि आदि) उपाय होने वह (पञ्चविंशति तत्व की जिज्ञासा) व्यर्थ है यह कथन उचित नही है। क्योंकि दृष्ट उपाय से ऐकान्तिक (पूर्णतया) और आत्यन्तिक (फिर कभी न होने वाली) दुःख की निवृत्ति नहीं होती।

दृष्टवदानुश्रविक: स ह्यविशुद्धिक्षयातिशययुक्तः ।
तद्विपरीत: श्रेयान् व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात् ॥ २ ॥

॥ भावार्थः ॥

आनुश्रविक (वैदिक) उपाय यज्ञादि भी दृष्ट (प्रत्यक्ष औषधि आदि) की तरह ही है। क्योंकि वह भी अविशुद्धि क्षयातिशय दोष से युक्त है। अतः उससे (दृष्ट और आनुश्रविक से) विपरीत व्यक्त (२३ तत्व), अव्यक्त (प्रकृति), और ज्ञ (पुरुष) का विज्ञान रूपी उपाय ही श्रेयस्कर है। इसी उपाय से तीनों प्रकार के दुःखों से एकान्तिक और आत्यन्तिक निवृत्ति सम्भव है।

मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्या: प्रकृतिविकृतय: सप्त ।
षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृति: पुरुष: ॥ ३ ॥

॥ भावार्थ ॥

मूलप्रकृति – अविकृति है (किसी के विकार से उत्पन्न नही होती), महत् आदि ७ (महत् ,अहंकार, और पञ्चतन्मात्र) प्रकृति और विकृति (कारण और कार्य) हैं, १६ (एकादशेन्द्रिय और पञ्चमहाभूत) केवल विकार (कार्य) हैं , पुरुष न तो प्रकृति (किसी का कारण) है न ही विकृति (किसी से उत्पन्न होने वाला) है।

दृष्टमनुमानमाप्तवचनं च सर्वप्रमाणसिद्धत्वात् ।
त्रिविधं प्रमाणमिष्टं प्रमेयसिद्धिः प्रमाणाद्धि ॥ ४ ॥

॥ भावार्थ ॥

सांख्य के मत में दृष्ट (प्रत्यक्ष), अनुमान , और आप्तवचन (शब्द) ये तीन ही प्रमाण हैं इन्ही में ही सभी प्रमाण सिद्ध हो जाते हैं। व्यक्त (११ इन्द्रिय , ५ महाभूत , ५तन्मात्र, महत् और अहंकार) अव्यक्त (प्रकृति) और ज्ञ (पुरुष) रूपी सभी प्रमेय इन्ही तीनों प्रमाणों से ज्ञात होते हैं।

प्रतिविषयाध्यवसायो दृष्टं त्रिविधमनुमानमाख्यातम् ।
तल्लिङ्गलिङ्गिपूर्वकमाप्तश्रुतिराप्तवचनं तु ॥॥ ५ ॥

॥ भावार्थ ॥

श्रोत्र चक्षु आदि इन्द्रियों से होने वाला ज्ञान दृष्ट (प्रत्यक्ष)है , अनुमान (पूर्ववत्,शेषवत् और सामान्यतोदृष्ट) भेद से तीन प्रकार का होता है। और वह लिङ्ग (हेतु) और लिङ्गि (साध्य) पूर्वक होता है । आप्त (यथार्थवक्ता के द्वारा कहा गया) श्रुति (वेद) आप्तवचन (शब्द) प्रमाण है।

- पूर्ववत् – बादल को देखकर वृष्टि का अनुमान।
- शेषवत् – कार्य को देखकर कारण का अनुमान (बाढ को देखकर वर्षा)।
- सामान्यतोदृष्ट – एक आम के पेड में मंजरी देखकर सभी में मंजरी आई होगी ऐसा अनुमान।

सामान्यतस्तु दृष्टादतीन्द्रियाणां प्रतीतिरनुमानात् ।
तस्मादपि चासिद्धं परोक्षमाप्तागमात्सिद्धम् ॥ ६ ॥

॥ भावार्थ ॥

सामान्यतः जो प्रत्यक्ष से नही अनुभूत होते ऐसे विषयों की प्रतीति अनुमान के द्वारा होती है। और जो अनुमान के द्वारा भी प्रतीत नहीं होता ऐसा परोक्ष आप्तागम (शब्द) प्रमाण से प्रतीत होते हैं।

प्रत्यक्षसिद्ध – व्यक्ततत्व।

अनुमानसिद्ध – प्रकृतिपुरुष।

शब्दसिद्ध – इन्द्रादि।

अतिदूरात् सामीप्यादिन्द्रियघातान्मनोऽनवस्थानात् ।
सौक्ष्म्याद्व्यवधानादभिभवात् समानाभिहाराच्च ॥ ७ ॥

॥ भावार्थ ॥

प्रकृति और पुरुष की प्रत्यक्ष अनुपलब्धि के आठ कारण हैं – १ –अत्यन्त दूर होना , २-अत्यन्त समीप होना , ३-इन्द्रियों का नष्ट होना, ४- मन का व्यग्र होना , ५ सूक्ष्म होना , ६. व्यवधान होना , ७ - अभिभूत होना (जैसे सूर्य से चन्द्र तारे) ८- समान वस्तु में मिल जाना (जैसे मूंग में मूंग मिल जाना, कबूतरों में कबूतर का मिल जाना इत्यादि)

सौक्ष्म्यात्तदनुपलब्धिर्नाभावात् कार्यतस्तदुपलब्धेः ।
महदादि तच्च कार्यं प्रकृतिसरूपं विरूपं च ॥ ८ ॥

॥ भावार्थ ॥

सूक्ष्मता के कारण उनकी(प्रकृति और पुरुष की) उपलब्धि नही होती , उनका अभाव नहीं है । महत् अहंकार आदि प्रकृति के सरूप और प्रकृति के विरूप कार्यों के द्वारा कारण(प्रकृति और पुरुष) की उपलब्धि (ज्ञान) हो जाता है ।

असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात् ।
शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्कार्यम् ॥ ९ ॥

॥ भावार्थ ॥

कार्य (उत्पन्न होने वाला वस्तु) भी सत् (विद्यमान) है ऐसा सिद्ध करने के लिये ये ५ हेतु बताये गये हैं । १-अविद्यमान कार्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती जैसे रेत से तेल की उत्पत्ति नही होती , २-जिसका निर्माण करना है उसके कारण का ही ग्रहण किया जाता है, जैसे दही बनाने के लिये दूध का ३- सब वस्तुयें सभी वस्तुओं से उत्पन्न नहीं होतीं ४- शक्तिमान् ही कार्य को उत्पन्न कर सकता है , ५- कार्य कारण से भिन्न नहीं होता है अतः इन सभी कारणों से सिद्ध होता है कि उत्पत्ति से पहले भी कार्य अव्यक्त रूप में सत् (विद्यमान) ही रहता है ।

हेतुमदनित्यमव्यापि सक्रियमनेकमाश्रितं लिंङ्गम् ।
सावयवं परतन्त्रं व्यक्तं विपरीतमव्यक्तम् ॥ १० ॥

॥ भावार्थः ॥

व्यक्त तत्त्व(२३) हेतुमत् (किसी कारण से उत्पन्न) , अनित्य (नाशवान्), अव्यापि (सभी जगह व्याप्त नहीं हो सकते) सक्रिय(क्रियावान्) अनेक, आश्रित(अपने कारण पर आश्रित) लिङ्ग (लय युक्त) सावयव (शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध आदि अवयवों से युक्त) और परतन्त्र हैं। इससे विपरीत अहेतुमत्, नित्य, निष्क्रिय, एक, अनाश्रित, अलिङ्ग, निरवयव, स्वतन्त्र, अव्यक्ततत्त्व (प्रकृति) है।

त्रिगुणमविवेकि विषय: सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि।
व्यक्तं तथा प्रधानं तद्विपरीतस्तथा च पुमान्॥ ११॥

॥ भावार्थ॥

व्यक्त तत्त्व(२३) और अव्यक्त तत्व (प्रकृति) त्रिगुण (तीनों गुणे वाले), अविवेकी (विवेक रहित), विषय (उपभोग योग्य) , सामान्य (साधारण) अचेतन (चेतना रहित=जड) प्रसवधर्मि (उत्पादक) हैं। इससे विपरीत अगुण (गुणों से रहित) विवेकी, अविषय (उपभोक्ता), असामान्य (विशेष), चेतन , अप्रसवधर्मी है।

प्रीत्यप्रीतिविषादात्मका: प्रकाशप्रवृत्तिनियमार्था:।
अन्योन्याभिभवाश्रयजननमिथुनवृत्तयश्च गुणा:॥ १२॥

॥ भावार्थ॥

क्रमशः प्रीति अप्रीति और विषाद देने वाले , प्रकाश , प्रवृत्ति(कार्य) और नियमन(स्थिति) में समर्थ तीन सत्त्व रजस् और तमस् गुण हैं। जो कि परस्पर एक दूसरे से अभिभूत , एक दूसरे के आश्रय , एक दूसरे जनक , एक दूसरे के मिथुन , एक दूसरे की वृत्तियां वाले होते हैं।

सत्त्वम् – प्रीत्यात्मक (सुखस्वरूप) , प्रकाश में समर्थ।

रजः – अप्रीत्यात्मक (दुःखस्वरूप), प्रवृत्ति (कार्य) में समर्थ।

तमः - विषादात्मक (मोहस्वरूप), नियमन (स्थिरता) में समर्थ।

सत्त्वं लघु प्रकाशकमिष्टमुपष्टम्भकं चलं च रज:।
गुरु वरणकमेव तम: प्रदीपवच्चार्थतो वृत्ति:॥ १३॥

॥ भावार्थ॥

सत्वगुण लघु और प्रकाशक है , रजोगुण उद्योतक (जैसे बैल बैल को देख कर उपष्टम्भ करता है) तथा गतिशील है । भारीपन और आवरण से परिपूर्ण तमोगुण है (क्योंकि इसके प्रभाव से शरीर में भारीपन और इन्द्रियों में आवरण हो जाता है) । जैसे दीपक परस्पर विरुद्ध तेल अग्नि और बाती से युक्त प्रकाश रूप अर्थ में प्रवृत्त होता है वैसे ये तीनों परस्पर विरोध से युक्त गुण भी बिभिन्न प्रकार अर्थों को निष्पन्न करते हैं ।

अविवेक्यादेः सिद्धिस्त्रैगुण्यात् तद्विपर्ययाभावात् ।
कारणगुणात्मकत्वात् कार्यस्याव्यक्तमपि सिद्धम् ॥ १४ ॥

॥ भावार्थ ॥

व्यक्त और प्रधान दोनों अविवेकी आदि गुणों से युक्त हैं ऐसा उनके तीनों गुणों से सिद्ध होता है । क्योंकि कार्य और कारण में कोई वैपरीत्य नहीं होता । जो गुण कार्य (व्यक्त २३ तत्त्वों) में है वही गुण कारण (अव्यक्त तत्व प्रकृति) में भी हैं ऐसा सिद्ध होता है । जैसे जो वर्ण कपडे में होगा उसी वर्ण का डोरा भी होगा उसी तरह जो गुण कार्यभूत व्यक्ततत्वों में होते हैं वही गुण कारणभूत अव्यक्त तत्त्व में होते हैं ।

भेदानां परिमाणात् समन्वयात् शक्तितः प्रवृत्तेश्च ।
कारणकार्यविभागादविभागाद् वैश्वरूप्यस्य ॥ १५ ॥

कारणमस्त्यव्यक्तं प्रवर्तते त्रिगुणतः समुदयाच्च ।
परिणामतः सलिलवत् प्रतिप्रतिगुणाश्रयविशेषात् ॥ १६ ॥

॥ भावार्थ ॥

व्यक्त तत्व रूपी जो भेद दिखाई देते हैं उनका निश्चित परिंमाण है, यदि प्रकृति न हो तो ये दिखाई देने वाला व्यक्त तत्त्व भी नही होते । जैसे लोक में हम किसी यज्ञोपवीती वटु को देखकर इसके पिता ब्राह्मण होंगे ऐसा समन्वय कर लेते हैं उसी तरह व्यक्त तत्वों को देखकर इसी गुण वाला कोई अव्यक्त (प्रकृति) तत्त्व भी होगा ऐसा समन्वय करते हैं । जिसकी जो कार्य करने की शक्ति होती है वह उसी काम को करता है जैसे कुम्हार घट बनाता है रथ इत्यादि नहीं । इसी तरह कारण और कार्य का विभाग होने के कारण (जैसे मिट्टी घडे को बनाती है , घडा मिट्टी को नहीं) , तथा विश्व में स्थित विभिन्न रूप पृथिवी जल तेज वायु आकाश आदि एक दूसरे से मिले हुये(अविभक्त) हैं । इन सभी कारणों से सिद्ध होता है कि अव्यक्त नामक कोई तत्त्व है और वह तत्त्व (प्रकृति) तीनों गुणों के समुदय (साम्यावस्था) से सृष्टि कार्य में प्रवृत्त होती है । जैसे पानी एक ही आकाश से गिरा अलग अलग आश्रयों में अलग रूप धारण

करता है उसी तरह उस एक अव्यक्त से उत्पन्न सभी व्यक्त तत्त्वों में अलग अलग आश्रय होने के कारण अलग अलग गुण दिखाई पडते हैं।

संघातपरार्थत्वात् त्रिगुणादिविपर्यादधिष्ठानात्।
पुरुषोऽस्ति भोक्तृभावात् कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च ॥ १७ ॥

॥ भावार्थ ॥

जैसे पर्यंक बनता है तो उसका उपभोक्ता कोई अवश्य होता है वैसे ही यह महत् आदि जो संघात हैं वे परार्थक हैं अतः उनका भी कोई भोक्ता अवश्य ही होगा। त्रिगुण अविवेकी (कारिका ११) आदि गुणों से विपरीत होने के कारण तथा जैसे रथ घोडे आदि का अधिष्ठाता एक सारथि है वैसे शरीर का अधिष्ठाता भी कोई(पुरुष) है। तथा महत् आदि भोग्य तत्त्वों का भोग करने वाला और कैवल्य (मोक्ष) में प्रवृत्त होने के कारण महदादि तत्त्वों से भिन्न पुरुष नामक एक तत्त्व भी है।

जननमरणकरणानां प्रतिनियमादयुगपत्प्रवृत्तेश्च।
पुरुषबहुत्वं सिद्धं त्रैगुण्यविपर्ययाच्चैव ॥ १८ ॥

॥ भावार्थ ॥

पुरुष अनेक हैं क्योंकि सबके जन्म ,मरण और करण (इन्द्रियां) अलग अलग होती हैं। सभी पुरुष एक साथ किसी कार्य में प्रवृत्त नही होते। सबमें तीनों गुणों का विपर्यय है। कोई सत्त्वगुण के कारण सुखी , तो कोई रजोगुण के कारण दुःखी और कोई तमोगुण के कारण मूढ होता है। अतः इन तीन कारणों से पुरुष का बहुत्व सिद्ध होता है॥

तस्माच्च विपर्यासात् सिद्धं साक्षित्वमस्य पुरुषस्य।
कैवल्यं माध्यस्थ्यं द्रष्टृत्वमकर्तृभावश्च ॥ १९ ॥

॥ भावार्थ ॥

उन तीनों गुणों के विपर्यय हो जाने से पुरुष साक्षी मात्र है यह सिद्ध होता है। वह गुणों से अन्य (केवल) है, परिव्राजक की तरह मध्यस्थ (तटस्थ) है, द्रष्टा है और अकर्त्ता है। कर्त्ता तो गुण हैं पुरुष उनके विपर्यय से युक्त है।

तस्मात्तत्संयोगादचेतनं चेतनावदिव लिङ्गम्।
गुणकर्तृत्वेऽपि तथा कर्तेव भवत्युदासीनः ॥ २० ॥

॥ भावार्थ ॥

पुरुष चेतन है और महदादि लिङ्ग अचेतन हैं फिर भी पुरुष के संयोग से वे चेतन की तरह प्रतीत होते हैं (जैसे घट ठण्डे पानी से युक्त होने पर ठण्डा और गरम पानी से युक्त होने पर गरम प्रतीत होता है) । उस उदासीन पुरुष के गुण ही कर्त्ता हैं तथापि वह कर्त्ता की तरह प्रतीत होता है। (जैसे चोरों के साथ पकडा गया अचोर भी चोर ही कहा जाता है उसी तरह कर्त्ता गुणों के साथ संयुक्त होने के कारण उदासीन पुरुष कर्त्ता की तरह लगता है ।

पुरुषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य ।
पङ्ग्वन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत्कृत: सर्ग: ॥ २१ ॥

॥ भावार्थ ॥

पुरुष प्रकृति के दर्शन के लिये और प्रकृति पुरुष के कैवल्य के लिये पङ्गु (पुरुष) और अन्ध(प्रकृति) की तरह संयुक्त होते हैं उससे ही सृष्टि की उत्पत्ति होती है ।

प्रकृतेर्महांस्ततोऽहंकारस्तस्माद् गणश्च षोडशक: ।
तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्य: पञ्चभूतानि ॥ २२ ॥

॥ भावार्थ ॥

प्रकृति से महत् (बुद्धि), महत् से अहंकार, अहंकार से १६ (११ इन्द्रियां और ५ तन्मात्राएं) और इन १६ में भी ५ तन्मात्राओं से ५ भूत उत्पन्न होते हैं ।

शब्दतन्मात्रा - आकाश

स्पर्शतन्मात्रा- वायु

रूपतन्मात्रा - तेज

रसतन्मात्रा - जल

गन्धतन्मात्रा - पृथिवी

अध्यवसायो बुद्धिर्धर्मो ज्ञानं विराग ऐश्वर्यम् ।
सात्त्विकमेतद्रूपं तामसमस्माद्विपर्यस्तम् ॥ २३ ॥

॥ भावार्थ ॥

अध्यवसाय (ज्ञान) बुद्धि का लक्षण है। उस बुद्धि के १.धर्म ,२.ज्ञान, ३.वैराग्य और ४.ऐश्वर्य ये चार सात्विक रूप हैं। इससे विपरीत १.अधर्म, २.अज्ञान, ३.अवैराग्य और ४.अनैश्वर्य ये चार तामस रूप हैं

अभिमानोऽहंकार: तस्माद्विविध: प्रवर्तते सर्ग: ।
एकादशकश्च गणस्तन्मात्रपञ्चकश्चैव ॥ २४ ॥

सात्त्विक एकादशक: प्रवर्तते वैकृतादहंकारात् ।
भूतादेस्तन्मात्र: स तामसस्तैजसादुभयम् ॥ २५ ॥

॥ भावार्थ ॥

अभिमान ही अहंकार है उससे दो प्रकार की सृष्टि उत्पन्न होती है। ११ इन्द्रियां और पांचतन्मात्राएं। जिस अहंकार में सत्त्वगुण की प्रधानता हो ऐसे अहंकार को वैकृत अहंकार कहा जाता है उससे एकादश इन्द्रियां उत्पन्न होती हैं। तथा जिस अहंकार में तमोगुण की प्रधानता होती है वह भूतादि अहंकार कहा जाता है उससे पांच तन्मात्राएं (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) उत्पन्न होती हैं।

बुद्धीन्द्रियाणि चक्षु:श्रोत्रघ्राणरसनत्वगाख्यानि ।

वाक्पाणिपादपायूपस्थानि कर्मेन्द्रियाण्याहु: ॥ २६ ॥

उभयात्मकमत्र मन: सङ्कल्पमिन्द्रियं च साधर्म्यात् ।

गुणपरिणामविशेषान्नानात्वं बाह्यभेदाश्च ॥ २७ ॥

॥ भावार्थ ॥

चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, रसना और त्वक् ये पांच बुद्धीन्द्रिय (ज्ञानेन्द्रिय) हैं तथा वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ ये पांच कर्मेन्द्रिय हैं। कर्मेन्दिय और ज्ञानेन्द्रिय दोनों के समान धर्म वाला मन उभयात्मक है इसे संकल्पक इन्द्रिय भी कहते हैं। इन ११ इन्द्रियों का गुणों का परिणाम होने के कारण अनेकत्व और बाह्य भेद भी हैं।

रूपादिषु पञ्चानामालोचनमात्रमिष्यते वृत्ति: ।

वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दाश्च पञ्चानाम् ॥ २८ ॥

॥ भावार्थ ॥

रूप आदि पांचो का आलोचन आदि ही पांच ज्ञानेन्द्रियों की वृत्ति है। जैसे चक्षु का रूप देखना , श्रोत्र का शब्द सुनना , रसना का रसानुभूति करना, घ्राण का गन्ध लेना और त्वक् का स्पर्श अनुभूत करना ही मात्र वृत्ति है। उसी तरह कर्मेन्द्रियों में वाक् का वचन (बोलना), पाणि(हाथ) का आदान (लेना), पाद का विहरण करना , पायु का उत्सर्जन (मल त्याग) करना और उपस्थ का आनन्द लेना ही वृत्ति है।

स्वालक्षण्यं वृत्तिस्त्रयस्य सैषा भवत्यसामान्या।

सामान्यकरणवृत्तिः प्राणाद्या वायवः पञ्च ॥ २९ ॥

॥ भावार्थ ॥

बुद्धि, अहंकार और मन इन तीनों का जो लक्षण कहा गया है वही उनकी असामान्य वृत्ति है। जैसे बुद्धि का अध्यवसाय (ज्ञान) , अहंकार का अभिमान, और मन का संकल्प ही असामान्य वृत्ति है। इससे पहले जो करणों (१० इन्द्रियों) की वृत्ति वृत्ति बताई गई है वह भी असामान्य ही है। तथा प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान रूपी जो वृत्तियां हैं वो सामान्य वृत्तियां हैं क्योंकि प्राण आदि केवल एक करण में ही नही होते अपितु अनेक में होने के कारण सामान्य वृत्ति हैं। एक जगह की ही वृत्ति असामान्य होती है तथा अनेक की वृत्ति सामान्य होती है।

युगपच्चतुष्टयस्य तु वृत्तिः क्रमशश्च तस्य निर्दिष्टा।
दृष्टे तथाप्यदृष्टे त्रयस्य तत्पूर्विका वृत्तिः ॥ ३० ॥

॥ भावार्थ ॥

बुद्धि, अहंकार और मन के साथ कोई भी इन्दिय संयुक्त होता है तो वह चतुष्टय कहलाता है। दृष्ट विषयों में इन चारों की वृत्ति कभी एक साथ तो कभी क्रमशः(संशय से निश्चय होनें पर) भी होती है। अदृष्ट विषयों में तो तीनों (बुद्धि, अहंकार और मन) की इन्द्रिय पूर्वक ही वृत्ति होती है। जैसे अदृष्ट रूप के चिन्तन में चक्षु पूर्वक ही वृत्ति होगी , अदृष्ट गन्ध की अनुभूति घ्राण पूर्वक ही होगी। इत्यादि।

स्वां स्वां प्रतिपद्यन्ते परस्पराकूतहेतुकां वृत्तिम्।
पुरुषार्थ एव हेतुर्न केनचित् कार्यते करणम् ॥ ३१ ॥

॥ भावार्थ ॥

बुद्धि अहंकार और मन परस्पर एक दूसरे के अभिप्राय से वृत्तियों को जानते हैं। उन सभी वृत्तियों का पुरुषार्थ (मोक्ष) ही हेतु है। और ये करण स्वयं ही प्रवृत्त होते हैं किसी के द्वारा नियन्त्रित होकर नहीं। करण क्या हैं ये आगे बताया जायेगा।

करणं त्रयोदशविधं तदाहरणधारणप्रकाशकरम्।
कार्यं च तस्य दशधाऽऽहार्यं धार्यं प्रकाश्यं च ॥ ३२ ॥

॥ भावार्थ ॥

करण तेरह प्रकार (बुद्धि, अहंकार और११ इन्द्रिय) का होता है और वे आहरण (लेना) धारण और प्रकाश करते हैं। जैसे कर्मेन्द्रिय रूपी करण आहरण और धारण करते हैं और ज्ञानेन्द्रिय रूपी करण प्रकाश करते हैं। और उसका कार्य भी १० प्रकार (कर्मेन्द्रियों का वचन आदि ५ और ज्ञानेन्द्रियों का रूप आदि ५) का होता है और वह कार्य भी आहार्य (लेने योग्य) धार्य (धारण करने योग्य) और प्रकाश्य (प्रकाशित करने योग्य) होता है। आहार्य और धार्य कार्य कर्मेन्द्रियों के हैं और प्रकाश्य कार्य ज्ञानेन्द्रियों के हैं।

अन्त:करणं त्रिविधं दशधा बाह्यं त्रयस्य विषयाख्यम्।
साम्प्रतकालं बाह्यं त्रिकालमाभ्यन्तरं करणम्॥ ३३ ॥

॥ भावार्थ ॥

अन्तः करण तीन (मन , बुद्धि, अहंकार) तथा इन्ही तीनों अन्तःकरणो के विषयभूत बाह्य करण १० (५ ज्ञानेन्द्रिय और ५ कर्मेन्द्रिय) होते हैं। बाह्य करण केवल वर्त्तमान काल के विषयों का ही ग्रहण करते हैं जबकि अन्तः करण तीनों कालों के विषयों का ग्रहण करते हैं।

बुद्धीन्द्रियाणि तेषां पञ्च विशेषाविशेषविषयाणि।
वाग्भवति शब्दविषया शेषाणि तु पञ्चविषयाणि॥ ३४ ॥

॥ भावार्थ ॥

ज्ञानेन्द्रियों के पांच विशेष और अविशेष विषय हैं। वाक् इन्द्रिय का केवल शब्द ही विषय है अन्य चारों कर्मेन्द्रियां तो पांचों विषयों वाली होती हैं। जैसे पाणि घट का ग्रहण करता है जिसमें शब्द,स्पर्श,रूप,रस और गन्ध सभी विषय होते हैं। पैर इन सभी विषयों से युक्त पृथ्वी पर चलता है।

सान्तःकरणा बुद्धिः सर्वं विषयमवगाहते यस्मात् ।
तस्मात् त्रिविधं करणं द्वारि द्वाराणि शेषाणि ॥ ३५ ॥

॥ भावार्थ ॥

क्योंकि अन्तः करण (मन और अहंकार) के साथ युक्त बुद्धि तीनों काल के विषयों का अवगाहन करती है। इसलिये ये तीनों करण द्वारि (द्वार के स्वामी) हैं और अवशिष्ट १० करण द्वार हैं। ये तीनों अन्तः करण अपनी इच्छा के अनुसार अलग अलग द्वारों से अलग अलग विषय ग्रहण करते हैं।

एते प्रदीपकल्पाः परस्परविलक्षणा गुणविशेषाः ।
कृत्स्नं पुरुषस्यार्थं प्रकाश्य बुद्धौ प्रयच्छन्ति ॥ ३६ ॥
सर्वं प्रत्युपभोगं यस्मात् पुरुषस्य साधयति बुद्धिः ।
सैव च विशिनष्टि पुनः प्रधानपुरुषान्तरं सूक्ष्मम् ॥ ३७ ॥

॥ भावार्थ ॥

सभी इन्द्रियां तथा अहंकार रूपी ये करण दीपक की तरह (प्रकाशक) तथा एक दूसरे से विलक्षण (भिन्न) गुण वाले होते हैं। जैसे दीपक अपनी परिधि में स्थित सभी विषयों को प्रकाशित करता है उसी तरह ये १२ करण सम्पूर्ण पुरुषार्थ को प्रकाशित करके बुद्धि को समर्पित करते हैं। पुरुष के सभी प्रकार के उपभोग की व्यवस्था (सिद्धि) बुद्धि ही करती है , और वही बुद्धि प्रधान और पुरुष के मध्य स्थित सूक्ष्म भेद को विशेषतया जानती है।

तन्मात्राण्यविशेषास्तेभ्यो भूतानि पञ्च पञ्चभ्यः ।
एते स्मृता विशेषाः शन्ता घोराश्च मूढाश्च ॥ ३८ ॥

॥ भावार्थ ॥

पांच तन्मात्राएं अविशेष(विशेष रहित) हैं उन पांच तन्मात्राओं से पांच भूत उत्पन्न होते हैं जो कि विशेष हैं (पृथिवी गन्ध तथा जल रस तन्मात्र के कारण विशेष है)। और ये पांच महाभूत शान्त= सुखस्वरूप (सत्त्वगुण की प्रधानता से), घोर = दुःखस्वरूप (रजोगुण की प्रधानता से) और मूढ = मोहस्वरूप (तमोगुण की प्रधानता से) हैं।

सूक्ष्मा मातापितृजाः सह प्रभूतैस्त्रिधा विशेषाः स्युः ।
सूक्ष्मास्तेषां नियता मातापितृजा निवर्तन्ते ॥ ३९ ॥

॥ भावार्थ ॥

सूक्ष्म शरीर , माता पिता से उत्पन्न शरीर , और प्रभूत (सुखदुःखमोह) ये तीन प्रकार के विशेष होते हैं । इन तीनों में जो सूक्ष्म है वह नित्य है और माता पिता से उत्पन्न शरीर निवृत्त (नष्ट) हो जाता है ।

पूर्वोत्पन्नमसक्तं नियतं महदादिसूक्ष्मपर्यन्तम् ।
संसरति निरुपभोगं भावैरधिवासितं लिङ्गम् ॥ ४० ॥

॥ भावार्थ ॥

सूक्ष्म (लिङ्ग) शरीर सबसे पूर्व में उत्पन्न , आसक्ति से रहित, नित्य , महत् से लेकर सूक्ष्म तन्मात्राओं तक बिना कुछ उपभोग किये धर्म आदि ८ भावों से अधिवासित संसरण करता रहता है ।

चित्रं यथाऽऽश्रयमृते स्थाण्वादिभ्यो विना यथाच्छाया ।
तद्वद्विना विशेषैर्न तिष्ठति निराश्रयं लिङ्गम् ॥ ४१ ॥

॥ भावार्थ ॥

जैसे बिना किसी आश्रय के चित्र नही रह सकता , स्थाणु आदि के बिन जैसे छाया नही रह सकती । उसी तरह विशेषों (पांच भूतों) के बिना आश्रय हीन लिङ्गशरीर स्थिर नहीं हो सकता ।

पुरुषार्थहेतुकमिदं निमित्तनैमित्तिकप्रसङ्गेन ।
प्रकृतेर्विभुत्वयोगान्नटवद् व्यवतिष्ठते लिङ्गम् ॥ ४२ ॥

॥ भावार्थ ॥

जैसे नट अलग अलग कपडे बदलकर कभी राजा तो कभी विदूषक इत्यादि बनता रहता है , उसी तरह यह सूक्ष्म शरीर भी मोक्ष हेतु निमित्त (धर्म आदि) तथा नैमित्तिक (ऊर्ध्वगमन आदि) के प्रसङ्ग से प्रकृति के विभु होने के कारण अलग अलग शरीर को धारण करके अलग अलग बनता रहता है ।

सांसिद्धिकाश्च भावाः प्राकृतिका वैकृताश्च धर्माद्याः ।
दृष्टाः करणाश्रयिणः कार्याश्रयिणश्च कललाद्याः ॥ ४३ ॥

॥ भावार्थ ॥

धर्म आदि ४ भाव सांसिद्धिक (जन्मजात – जैसे कपिल मुनि के) , प्राकृतिक (स्वयं प्रकृति से उत्पन्न- जैसे सनकादियों तथा बुद्ध के) तथा वैकृतिक (गुरु के द्वारा उत्पन्न – ज्ञान से वैराग्य , वैराग्य से धर्म, धर्म से ऐश्वर्य) तीन प्रकार के होते हैं और इन पर ही सूक्ष्म शरीर आश्रित होते हैं। स्थूल शरीर तो कलल(कलल अस्थि मांस) आदि पर आश्रित होता है।

धर्मेण गमनमूर्ध्वं गमनमधस्ताद् भवत्यधर्मेण ।
ज्ञानेन चापवर्गो विपर्ययादिष्यते बन्धः ॥ ४४ ॥

वैराग्यात् प्रकृतिलयः संसारो भवति राजसाद् रागात् ।
ऐश्वर्यादविघातो विपर्ययात्तद्विपर्यासः ॥ ४५ ॥

॥ भावार्थ ॥

धर्म से ऊर्ध्वगति तथा अधर्म से अधोगति होती है , ज्ञान से मोक्ष प्राप्ति तथा अज्ञान से बन्ध प्राप्ति होती है। वैराग्य से प्रकृति में लय तथा राग (अवैराग्य) से संसार होता है। ऐश्वर्य से अविघात (नित्यता) और अनैश्वर्य से नाश होता है।

एष प्रत्ययसर्गो विपर्ययाशक्तितुष्टिसिद्ध्याख्यः ।
गुणवैषम्यविमर्दात् तस्य च भेदास्तु पञ्चाशत् ॥ ४६ ॥

पञ्च विपर्ययभेदा भवन्त्यशक्तिश्च करणवैकल्यात् ।
अष्टाविंशतिभेदा तुष्टिर्नवधाऽष्टधा सिद्धिः ॥ ४७ ॥

॥ भावार्थ ॥

यह प्रत्यय(बुद्धि) का सर्ग (सृष्टि) विपर्यय , अशक्ति, तुष्टि और सिद्धि संज्ञाओं से ४ प्रकार का होता है। पुनः इन चारों में गुणों की विषमता के कारण प्रत्ययसर्ग के कुल ५० भेद होते हैं। जैसे विपर्यय के ५ भेद, इन्द्रियों की विकलता से अशक्ति के २८ भेद, तुष्टि के ९ भेद और सिद्धि के ८ भेद (कुल प्रत्ययसर्ग के ५० भेद) होते हैं।

भेदस्तमसोऽष्टविधो मोहस्य च दशविधो महामोहः ।
तामिस्रोऽष्टादशधा तथा भवत्यन्धतामिस्रः ॥ ४८ ॥

॥ भावार्थ ॥

विपर्यय के ५ प्रकारों में का वर्णन

१. तम – आठ(८) प्रकार का होता है।

२. मोह –यह भी आठ(८) प्रकार का होता है।

३. महामोह – दश(१०) प्रकार का होता है।

४. तामिस्र –अठारह (१८) प्रकार का होता है।

५. अन्धतामिस्र – यह भी अठारह(१८) प्रकार का होता है।

कुल योगतः विपर्यय ६२ उपभेद होते हैं।

एकादशेन्द्रियवधाः सह बुद्धिवधैरशक्तिरुद्दिष्टा।
सप्तदश वधा बुद्धेर्विपर्ययात् तुष्टिसिद्धीनाम् ॥ ४९ ॥

॥ भावार्थ ॥

इन्द्रियों के नाश से होने वाली अशक्ति (अन्धत्व बधिरत्व आदि) ११ प्रकार की होती है। ९ तुष्टियों तथा ८ सिद्धियों के विपर्यय (विपरीत) से बुद्धि का वध १७ प्रकार का होता है। कुल अशक्ति के २८ भेद होते हैं।

आध्यात्मिक्यश्चतस्रः प्रकृत्युपादानकालभाग्याख्याः।
बाह्या विषयोपरमात् पञ्च च नव तुष्टयोऽभिमताः ॥ ५० ॥

ऊहः शब्दोऽध्ययनं दुःखविघातास्त्रयः सुहृत्प्राप्तिः।
दानं च सिद्धयोऽष्टौ सिद्धेः पूर्वोऽङ्कुशस्त्रिविधः ॥ ५१ ॥

॥ भावार्थ ॥

आध्यात्मिक तुष्टि प्रकृति, उपादान, काल और भाग्य के भेद से ४ प्रकार की होती है। और बाह्य शब्द स्पर्श रूप रस और गन्ध रूपी विषयों के उपरमण रूपी ५ प्रकार कुल ९ प्रकार की तुष्टि होती है। ऊह , शब्द , अध्ययन, तीन प्रकार के दुःखों का विघात, सुहृत्प्राप्ति और दान ये ८ सिद्धियां होती हैं। और सिद्धि से पहले के तीन (विपर्यय, अशक्ति, तुष्टि) सिद्धि में बाधक हैं।

न विना भावैर्लिङ्गं न विना लिङ्गेन भावनिर्वृत्तिः।
लिङ्गाख्यो भावाख्यस्तस्माद् द्विविधः प्रवर्तते सर्गः ॥ ५२ ॥

॥ भावार्थ ॥

भावसृष्टि =प्रत्ययसर्ग (विपर्यय,अशक्ति आदि) के बिना लिङ्गसृष्टि = तन्मात्रसृष्टि (भौतिकसृष्टि) की कल्पना नहीं हो सकती , और लिङ्गसृष्टि के बिना भावसृष्टि कि निष्पत्ति नहीं हो सकती है। अतः भौतिकसृष्टि और प्रत्ययसृष्टिः ऐसी दो प्रकार की सृष्टि प्रवृत्त होती है।

अष्टविकल्पो दैवस्तैर्यग्योनश्च पञ्चधा भवति ।
मानुषकश्चैकविधः समासतो भौतिकः सर्गः ॥ ५३ ॥

॥ भावार्थ ॥

भौतिक सृष्टि मुख्यतः ३ प्रकार की होती है दैव , तैर्यग्योन और मानुष। उनमें से दैवसृष्टि ८ प्रकार की , तैर्यग्योन सृष्टि ५ प्रकार की , और मानुष एक प्रकार की होती है। कुल मिलाकर भौतिकसृष्टि १४ प्रकार की होती है।

- दैवसृष्टि– ब्राह्म,प्राजापत्य, सौम्य, ऐन्द्र, गान्धर्व, याक्ष, राक्षस और पैशाच।
- तैर्यग्योनसृष्टि – पशु(पालित) , मृग(वन्य), पक्षी, सरीसृप और स्थावर।

उर्ध्वं सत्त्वविशालस्तमोविशालश्च मूलतः सर्गः ।
मध्ये रजोविशालो ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तः ॥ ५४ ॥

॥ भावार्थ ॥

ब्राह्म आदि सर्ग सत्त्वगुणप्रधान (रजस् और तमस् गौण) हैं और पशु पक्षी आदि का सर्ग तमोगुण(सत्त्व और रजस् गौण) प्रधान है। मानुष सर्ग रजोगुण (सत्त्व और तमस् गौण) प्रधान है इस तरह से ब्रह्म से लेकर स्थावर तक की सृष्टि कही गई है।

तत्र जरामरणकृतं दुःखं प्राप्नोति चेतनः पुरुषः ।
लिङ्गस्याविनिवृत्तेस्तस्माद् दुःखं स्वभावेन ॥ ५५ ॥

॥ भावार्थ ॥

चेतन पुरुष बुढापा मृत्यु इत्यादि से उत्पन्न दुःख को प्राप्त करता है। जब तक वह पच्चीस तत्वों के अच्छी तरह से ज्ञान द्वारा लिङ्ग शरीर से निवृत्त नहीं हो जाता तब तक दुःखों का उपभोग करता है।

उपरोक्त ज्ञान के बाद जब वह शरीर का त्याग करता है तब दुःखों से ऐकान्तिक और आत्यन्तिक मुक्ति रूपी मोक्ष को प्राप्त करता है।

इत्येष प्रकृतिकृतो महदादिविशेषभूतपर्यन्तः।
प्रतिपुरुषविमोक्षार्थं स्वार्थ इव परार्थ आरम्भः॥ ५६॥

॥ भावार्थ॥

इस प्रकार यह प्रकृति के द्वारा बनाई गई महत् से लेकर भूत तक की सृष्टि प्रत्येक पुरुष के मोक्ष के लिये है। यह प्रकृति का स्वार्थ नहीं है तथापि वह स्वार्थ की तरह ही परार्थ के कार्य करती है।

वत्सविवृद्धिनिमित्तं क्षीरस्य यथा प्रवृत्तिरज्ञस्य।
पुरुषविमोक्षनिमित्तं तथा प्रवृत्तिः प्रधानस्य॥ ५७॥

औत्सुक्यविनिवृत्यर्थं यथा क्रियासु प्रवर्तते लोकः।
पुरुषस्य विमोक्षार्थं प्रवर्तते तद्वदव्यक्तम्॥ ५८॥

॥ भावार्थ॥

जिस तरह अचेतन दूध चेतन बछडे के बढने का निमित्त होता है उसी तरह अचेतन प्रकृति चेतन पुरुष के मोक्ष का कारण होती है। जिस तरह अपनी उत्सुकता को मिटाने के लिये लोग अलग अलग क्रियाओं में प्रवृत्त होते हैं उसी तरह पुरुष के मोक्ष के लिये अव्यक्त (प्रकृति) भी प्रवृत्त होता है।

रङ्गस्य दर्शयित्वा निवर्तते नर्तकी यथा नृत्यात्।
पुरुषस्य तथाऽत्मानं प्रकाश्य विनिवर्तते प्रकृतिः॥ ५९॥

नानाविधैरुपायैरुपकारिण्यनुपकारिणः पुंसः।
गुणवत्यगुणस्य सतः तस्यार्थमपार्थकं चरति॥ ६०॥

॥ भावार्थ॥

नर्तकी जैसे शृङ्गारादि रसों के द्वारा इतिहासादि भावों से युक्त नृत्य को प्रस्तुत करके उससे निवृत्त हो जाती है उसी तरह प्रकृति भी पुरुष को अपना प्रकाश दिखाकर निवृत्त हो जाती है।जैसे उपकारी व्यक्ति दूसरों पर उपकार करते हैं तथा अपने प्रत्युपकार की आशा नही रखते उसी प्रकार गुणवती प्रकृति भी अगुण पुरुष के लिये उपकारिणी है वह भी अपने प्रत्युपकार की आशा नही रखती॥

प्रकृते: सुकुमारतरं न किञ्चिदस्तीति मे मतिर्भवति ।
या दृष्टाऽस्मीति पुनर्न दर्शनमुपैति पुरुषस्य ॥ ६१ ॥

॥ भावार्थ ॥

ईश्वरकृष्ण कहते हैं कि प्रकृति से भी अधिक सुकुमार और कुछ नहीं है ऐसा मेरा मत है। क्योंकि मैं इस पुरुष के द्वारा देख ली गई हूं ऐसा जानकर उस पुरुष के पुनः दर्शन नहीं करती।

तस्मान्न बध्यतेऽद्धा न मुच्यते नापि संसरति कश्चित् ।

संसरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृतिः ॥६२॥

॥ भावार्थ ॥

इसलिये पुरुष न तो बद्ध होता है न ही मुक्त होता है न ही बहुत से आश्रयों में संसरण करता है अपितु प्रकृति ही महत् आदि अनेक आश्रयों में बद्ध होती है मुक्त होती है और संसरण करती है।

रूपैः सप्तभिरेव तु बध्नात्यात्मानमात्मना प्रकृतिः ।
सैव च पुरुषार्थं प्रति विमोचयत्येकरूपेण ॥ ६३ ॥

॥ भावार्थ ॥

अज्ञान, धर्म, अधर्म, वैराग्य, अवैराग्य, ऐश्वर्य और अनैश्वर्य इन सात रूपों से प्रकृति अपने आपको बांध लेती है। और वही पुनः मुझे पुरुषार्थ करना है ऐसा सोच कर एकरूप (ज्ञान) से अपने आप को मुक्त कर देती है।

एवं तत्वाभ्यास्यान्नास्मि न मे नाहमित्यपरिशेषम् ।
अविपर्ययाद्विशुद्धं केवलमुत्पद्यते ज्ञानम् ॥ ६४ ॥

तेन निवृत्तप्रसवामर्थवशात् सप्तरूपविनिवृत्ताम् ।
प्रकृतिं पश्यति पुरुषः प्रेक्षकवदवस्थितः स्वस्थः ॥ ६५ ॥

॥ भावार्थ ॥

इस प्रकार पूर्वोक्त तत्वों का अभ्यास करने से मैं नहीं हूं , मेरा नहीं है इत्यादि अपरिशेष (अहंकार रहित) संशयादि के नाश से केवल विशुद्ध ज्ञान उत्पन्न होता है। और उस ज्ञान से स्वस्थ पुरुष दर्शक की तरह

सात रूपों से विनिवृत्त तथा महत् आदि व्यक्त तत्त्वों की उत्पत्ति से निवृत्त हो चुकी प्रकृति को देखता है ।

दृष्टा मयेत्युपेक्षक एको दृष्टाहमित्युपरमत्यन्या ।
सति संयोगेऽपि तयो: प्रयोजनं नास्ति सर्गस्य ॥ ६६ ॥

॥ भावार्थ ॥

प्रकृति को मैने देख(जान) लिया है पुरुष ऐसा सोच कर उपेक्षा करता है । और पुरुष नें मुझे देख लिया है ऐसा सोच कर प्रकृति उससे निवृत्त हो जाती है । ऐसी स्थिति में दोनों के संयोग हो जाने पर भी पुनः सृष्टि का कोई प्रयोजन ही नहीं है ॥

सम्यग्ज्ञानाधिगमाद् धर्मादीनामकारणप्राप्तौ ।
तिष्ठति संस्कारवशाच्चक्रभ्रमिवद् धृतशरीर: ॥ ६७ ॥

प्राप्ते शरीरभेदे चरितार्थत्वात् प्रधानविनिवृतौ ।
ऐकान्तिकमात्यन्तिकमुभयं कैवल्यमाप्नोति ॥ ६८ ॥

॥ भावार्थ ॥

पच्चीस तत्त्वों के अच्छी तरह ज्ञान हो जाने पर धर्म, अधर्म, अज्ञान, वैराग्य, अवैराग्य, ऐश्वर्य और अनैश्वर्य मोक्ष के प्रति कारण नहीं हैं यह ज्ञान प्राप्त हो जाने पर भी पुरुष मुक्त नहीं होता , चक्रभ्रमि (कुम्हार के चाक) की तरह वह संस्कार के कारण मृत्यु से पहले तक शरीर को धारण करता हुआ स्थित रहता है । धर्म, अधर्म, आदि के द्वारा अर्जित संस्कार का क्षय हो जाने पर जब पुरुष शरीर से भिन्न हो जाता है । तब वह प्रधान तत्त्व की निवृत्ति से चरितार्थ ऐकान्तिक और आत्यन्तिक दोनों तरह के मोक्ष को प्राप्त करता है ॥

पुरुषार्थज्ञानमिदं गुह्यं परमर्षिणा समाख्यातम् ।
स्थित्युत्पत्तिप्रलयाश्चिन्त्यन्ते यत्र भूतानाम् ॥ ६९ ॥

॥ भावार्थ ॥

जीवों के मोक्ष के लिये यह रहस्यात्मक गूढ ज्ञान तत्त्व परमर्षि कपिल ने कहा । जिसमें सभी भूतों की स्थिति उत्पत्ति प्रलय आदि का चिन्तन किया जाता है ।

एतत्पवित्रमग्र्यं मुनिरासुरयेऽनुकम्पया प्रददौ ।
आसुरिरपि पञ्चशिखाय तेन च बहुधा कृतं तन्त्रम् ॥ ७० ॥

शिष्यपरम्परयाऽऽगतमीश्वरकृष्णेन चैतदार्याभिः ।
संक्षिप्तमार्यमतिना सम्यग्विज्ञाय सिद्धान्तम् ॥ ७१ ॥

॥ भावार्थ ॥

यह पवित्र और अग्रणी ज्ञान मुनि(कपिल) ने अनुकम्पा से आसुरि नामक शिष्य को दिया, आसुरि ने पंचशिखाचार्य को दिया और उन्होनें इसका षष्टितन्त्र नामक ग्रन्थ की रचना के द्वारा बहुत प्रचार किया । उन्ही की शिष्य परम्परा के द्वारा प्राप्त इस ज्ञान के सिद्धान्तों को श्रेष्ठ बुद्धि वाले ईश्वरकृष्ण नें आर्या छन्दों में निबद्ध करके संक्षिप्त किया ।

सप्तत्यां किल येऽर्थास्तेऽर्थाः कृत्स्नस्य षष्टितन्त्रस्य ।
आख्यायिकाविरहिताः परवादविवर्जिताश्चापि ॥ ७२ ॥

॥ भावार्थ ॥

इस सप्तति (७० कारिकाओं) में जो भी अर्थ प्रतिपादित किये गये हैं वो अर्थ पंचशिखाचार्य द्वारा कृत सम्पूर्ण षष्टितन्त्र के हैं । इस सप्तति में आख्यायिका (कथानक) तथा दूसरों के सिद्धान्त नही कहे गये हैं ।

व्याख्याता
-अरुण कुमार पाण्डेय
arunpandeyshastri@gmail.com